नियमसार, परमार्थ प्रतिक्रमण। यथार्थ प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ? सूक्ष्म बात है।

ये **चौदह भेदवाले मार्गणास्थान...** आहाहा! ज्ञान की पर्याय के भेद, गति के भेद, दर्शन के भेद, समकित के भेद, ऐसे जो भेद, वे मेरे परमस्वभावभाव में वे नहीं हैं। धर्मी की दृष्टि में त्रिकाली परमस्वभावभाव लेने पर ये भेद उसमें हैं नहीं। आहाहा! चौदह भेद ये नहीं हैं तथा चौदह जीव (स्थान) के भेद, परमस्वभावभाव वस्तु-ज्ञान आनन्द का स्वभाव परम जो त्रिकाल, ऐसे अभेदस्वभाव में जीव के चौदह भेद नहीं हैं। आहाहा! तथा चौदह गुणस्थान नहीं हैं। आहाहा! गुणस्थान जो पर्याय में सब भेद हैं, चौदहवाँ गुणस्थान और तेरहवाँ गुणस्थान-वे पर्याय के भेद त्रिकाली परमस्वभाव की दृष्टि करने पर, उसमें वे भेद नहीं हैं। आहाहा! तीन (होकर) ४२ आये—१४ मार्गणा, १४ जीव स्थान, १४ गुणस्थान (इस प्रकार कुल ४२ हुए)।

शुद्धनिश्चय से... परम शुद्धनिश्चय का स्वभावभाव, एकरूप परमस्वभावभाव, एकरूप त्रिकाली सहजात्मस्वरूप त्रिकाली स्वभाव पारिणामिकभाव या ज्ञायकभाव, इस **शुद्धनिश्चयनय से परमभावस्वभाववाले को...** आहाहा! मैं तो परमस्वभावभाववाला मेरा आत्मा है। परमस्वभावभाव। परमभावस्वभाववाला - ऐसी भाषा लेना। परमभाव -स्वभाववाला। परमभाव, ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, शुद्धपारिणामिकभाव - ऐसे **परमभाव -स्वभाववाले को (-परमभाव जिसका स्वभाव है, ऐसे मुझे) नहीं हैं।** आहाहा! अभेद दृष्टि में वे भेद नहीं हैं। वे सब भेद तो व्यवहारनय का विषय है। है, उतना जाननेयोग्य है; आदरणने योग्य वह नहीं है। आहाहा! परमभावस्वभाववाला तत्त्व, परमभाव त्रिकाली ज्ञायकभाव, ऐसा स्वभाववाला तत्त्व, जिसका स्वभाव परमभाव है, उसमें भेद नहीं है। ओहोहो! यह सम्यग्दर्शन का विषय है। सूक्ष्म पड़े, परन्तु मार्ग तो यह है।

वर्तमान पर्याय को त्रिकाली परमभावस्वभाव सन्मुख झुकाना, उसमें भी परमस्वभावभाव में वह पर्याय जो झुकायी, वह भी उसमें नहीं है। आहाहा! आहाहा! ऐसा मार्ग! परम शान्त, शीतल चन्द्र स्वभाव जैसे शीतल, वैसे परमशीतलस्वभाव ऐसा आत्मा, पूर्ण स्वभाव, एकरूप भाव, अभेदभाव में यह भेद मुझे नहीं है। आहाहा! कहो, अब यहाँ

तो अभी धन्धा और व्यापार में... अभी गाया नहीं ? 'सरवालो मांडजो' क्या जिन्दगी का योगफल ? तुमने जिन्दगी में क्या किया ? योगफल निकालना। आहाहा!

मैं.. ऐसा कहा न ? परमस्वभाव, **परमभावस्वभाववाले को...** परमस्वभावभाववाले को अर्थात् जिसने दृष्टि में परमस्वभावभाव लिया, उसे - मुझे ये भेद मुझमें नहीं है। आहाहा! यहाँ तक जाना। इसके बिना सम्यग्दर्शन नहीं होगा, सम्यग्ज्ञान नहीं होगा, (स्वरूप के) आचरण का आनन्द भी अभेद की दृष्टि के बिना नहीं होगा। आहाहा!

भाषा कैसी है ? कि **शुद्धनिश्चयनय से...** शुद्धनिश्चय स्वभाव की-त्रिकाल स्वभाव की दृष्टि से **परमभावस्वभाववाले को...** अर्थात् मुझे। मैं **परमभावस्वभाववाले को...** अर्थात् जिसने परमभावस्वभाव दृष्टि में लिया उसे, मुझे ये गुणस्थान और भेद हैं नहीं। आहाहा! अब यहाँ तो दया, दान, व्रत करो (तो) कल्याण होगा (-ऐसा लोग मानते हैं)। अरे! भाई! यह तो चौथे गुणस्थान में परमस्वभावभाववाले को।

चैतन्यदल वस्तु जो पूरी पड़ी है, सत् तत्त्व, आत्मतत्त्व, जो वस्तु का दल-तत्त्व है, उस परमस्वभावभाववाले को, परमभावस्वभाववाले को.. आहाहा! मेरा परमभावस्वभाववाले को, मुझे यह मार्गणा, जीवस्थान और गुणस्थान नहीं हैं। आहाहा! यहाँ तक जाए तब इसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन भी जिसका विषय नहीं। चौथा गुणस्थान, तेरहवाँ गुणस्थान भी जिसका विषय नहीं। आहाहा! जो दृष्टि पर के ऊपर और भेद के ऊपर और पर्याय के ऊपर है, उस दृष्टि की गुलाँट खाने पर परमभावस्वभाववाला मैं, ऐसा दृष्टि ने जब परमभावस्वभाव को पकड़ा, तब कहते हैं कि परमभावस्वभाववाले ऐसे मुझे ये भेद नहीं हैं। आहाहा! अब यहाँ तो विवाद (करे)। बाहर का विवाद। निमित्त से होता है और क्रमबद्ध नहीं और पर्याय में भी दया, दान के कषाय मन्दता के भाव करने से, सरागचारित्र करने से वीतरागचारित्र होगा। (ऐसा लोग मानते हैं)। आहाहा!

यहाँ तो (कहते हैं) दृष्टि के विषय में परमभावस्वभाववाला ऐसा मैं, उसे मेरी चारित्र की पर्याय के भेद भी उस मेरी चीज़ में नहीं हैं। आहाहा! आहाहा! है ? **परमभाव-स्वभाववाले को...** अर्थात् कि ऐसे मुझे... ऐसे मुझे। कथन में कहना हो तो क्या करे ? परमभावस्वभाव निधान, जिसके एक ज्ञानगुण में केवल (ज्ञान) की पर्यायें अनन्त-अनन्त पड़ी हैं, ऐसा एक ज्ञानगुण, क्षायिक समकित की पर्याय जो अनन्त-अनन्त हैं, ऐसा

एक श्रद्धागुण। आनन्द की पर्याय परमात्मा को अनन्त-अनन्त आनन्द प्रगट हुआ, ऐसे अनन्त आनन्द की अनन्त पर्यायें जिसमें भरी हैं, ऐसे आनन्द में, ऐसे आनन्दादि गुण का स्वभाव, ऐसा परमभाव। आहाहा! ऐसे **परमभावस्वभाववाले को...** अर्थात् कि ऐसे मुझे, ऐसा। आहाहा! गजब काम है, प्रभु! मार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहाहा!

यहाँ तो बाहर की धमाल से मानो ऐसा किया.. यह किया.. यह किया.. मन्दिर बनाया और पच्चीस लाख का मन्दिर बनाया, पचास लाख का खर्च किया और उससे धर्म होगा। आहाहा! राग की मन्दता की हो तो पुण्य है, परन्तु वह पुण्य भी मेरे परमभावस्वभाववाले को नहीं है। आहाहा! तीन काल-तीन लोक में रहा हुआ भगवान मेरा स्वरूप, परमभावस्वभाव, परमभावस्वभाव... आहाहा! ऐसे मुझे... ऐसे मुझे ये भेद नहीं हैं। आहाहा! उसका नाम पर से हटकर अभेद में गया, उसका नाम निश्चयप्रतिक्रमण है। आहाहा!

अब दूसरी बात लेते हैं। **मनुष्य और तिर्यंचपर्याय की काया के,...** नारकी और देव नहीं लिए। क्योंकि वह तो नारकी का शरीर तो... देव का शरीर अनुकूल.. अब यह तिर्यंच और मनुष्य दो की बात ली है और वही स्वयं समकित पा सकते हैं। तिर्यंच पाँचवाँ गुणस्थान पा सकते हैं, मनुष्य केवल (ज्ञान) पा सकते हैं। नारकी और देव तो चौथे गुणस्थान को पा सकते हैं। आगे नहीं बढ़ सकते। इसलिए उनकी देह की बात नहीं ली। यहाँ तो **मनुष्य और तिर्यंचपर्याय की काया...** यह शरीर, उसमें **वयकृत विकार से...** वयकृत विकार। शरीर की अवस्थारूपी वय। बालवय, युवावय, स्थविरवय, वृद्धवय, ऐसे **(-परिवर्तन से) उत्पन्न होनेवाले बाल-युवा-स्थविर-वृद्धावस्थादिरूप अनेक स्थूल-कृश विविध भेद...** आहाहा! शरीर की अवस्था बाल, युवक, वृद्ध तथा स्थविर। ये सब अवस्थाएँ मुझे नहीं हैं। आहाहा! मैं युवक नहीं, मैं वृद्ध नहीं, मैं बालक नहीं, मैं स्थविर नहीं। आहाहा!

ऐसे **भेद शुद्धनिश्चयनय के अभिप्राय से...** शुद्धनिश्चय का जो अभिप्राय, त्रिकाली परम एकरूप स्वभावभाव के अभिप्राय से, बाल-युवक-वृद्ध अवस्था आदि मुझे नहीं हैं। आहाहा! २५-३० वर्ष की युवक अवस्था। पुष्ट शरीर हो, पाँच-पाँच चूरमे के लड्डू उड़ाता हो, अरबी के (भुजिया) साथ में ले। चले तो जमीन काँपे, जूते पहने हुए हों और... आहाहा! बापू! शरीर की अवस्था की दशा, वह प्रभु आत्मा की नहीं है। आहाहा!

भाई! वह तो जड़ की दशा है। वह वयकृत विकार है। बाल, युवक, वह सब वयकृत विकार है। स्वभाव में नहीं है। आहाहा! वहाँ जाना।

युवा अवस्था। चक्रवर्ती का पुत्र हो, तीर्थंकर का पुत्र हो... आहाहा! जिसकी देव सेवा करते हों, उसकी देव भी सम्हाल करते हैं। आहाहा! ऐसा जो युवा शरीर, रूपवान, पहले संहननवाला.. परन्तु यह बाल-युवा-वृद्ध-स्थविर यह वयकृत अवस्था, शरीर की स्थिति / अवस्था है। वह मुझे नहीं है, मैं उसमें नहीं हूँ, मुझमें वह नहीं है। आहाहा! यह अन्तर में उतारना, बापू! यह अपूर्व बात है। आहाहा!

यह बाल अवस्था, युवा अवस्था, स्थविर... ५०-६०-७० वर्ष की उम्र में स्थिर हुआ। **वृद्धावस्थादिरूप अनेक स्थूल...** शरीर का स्थूल। **कृश...** पतला, मोटा, लट्ठ। आहाहा! ऐसे **विविध भेद शुद्धनिश्चयनय के अभिप्राय से...** मेरे सम्यग्दर्शन के अभिप्राय से... आहाहा! उसके विषय में जो अखण्ड परमात्मा है, उसमें मुझे ये अवस्थाएँ नहीं हैं। आहाहा! यौवन अवस्था विद्यमान चीज़ है, वह मेरी विद्यमान चीज़ में यह विद्यमान नहीं है। आहाहा! रूपवान शरीर हो, सुन्दर शरीर हो, सब अवयव कोमल हो, मुलायम हो, पतले हों, कहते हैं कि यह सब अवस्थाएँ स्थूल और कृश, लट्ठ जैसी हो या पतली हो (वह मुझे नहीं है)। आहाहा! लोग नहीं कहते कि मेरी काठी पतली है, शरीर पतला है, मेरा शरीर दलदार है-पुष्ट है। अरे! प्रभु! वह तो जड़ की दशा है न, वह आत्मा में कहाँ से आयी? आत्मा उस दशा को स्पर्श भी नहीं करता न? आहाहा! युवा-बाल-वृद्ध अवस्था को आत्मा स्पर्श भी नहीं करता न। आहाहा! और युवक की इन्द्रियाँ जो पुष्ट हों, उन्हें आत्मा स्पर्श नहीं करता और आत्मा से इन्द्रियों की पुष्टि नहीं होती। आहाहा! वह तो जड़ की दशा है। आहाहा! यह लिंग आदि कठिन हो या शिथिल पड़े या पतला पड़े या नपुंसकता हो, वह सब जड़ की दशा है। आहाहा! मुझे नहीं है।

बाह्य में कोई मनुष्य नपुंसक हो, तो भी वह सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। नारकी तो सब नपुंसक ही हैं। उनकी बात नहीं ली है। देव में नपुंसक है नहीं, वहाँ सब देवी और देव स्त्री और पुरुष ही हैं। यहाँ तिर्यंच और मनुष्य में वयकृत भेद पड़ते हैं। बाल, वृद्ध, युवक, स्थविर। आहाहा! ये सब भेद शुद्धनिश्चय मेरा प्रभु स्वभाव, परमस्वभावभाव, ऐसे मुझे ये (भेद) हैं नहीं। आहाहा! पश्चात्...

सत्ता,... मेरी **अवबोध,...** ज्ञान, **परमचैतन्य और सुख की अनुभूति में...** आहाहा! **लीन ऐसे विशिष्ट आत्मतत्त्व को ग्रहण करनेवाले...** आहाहा! यहाँ तो चौथे गुणस्थान से.. आहाहा! अनुभूति ली है न? **सत्ता, अवबोध, परमचैतन्य और सुख की अनुभूति में लीन ऐसे विशिष्ट आत्मतत्त्व...** ऐसा जो मेरा विशिष्ट आत्मतत्त्व, जो कि मैं आत्मतत्त्व की अनुभूति में हूँ। आहाहा! उसमें **शुद्धद्रव्यार्थिकनय के बल से...** शुद्धद्रव्य जिसका प्रयोजन है, उसके **बल से मेरे सकल मोह-राग-द्वेष नहीं हैं।** मोह और सकल राग मेरे स्वरूप में है ही नहीं। आहाहा!

देखो! यह प्रतिक्रमण। प्रति-वापस होना, विमुख होना। आहाहा! विमुख होकर, है वहाँ एकाग्र होना। सूक्ष्म बातें, भाई! वीतरागधर्म बहुत अलौकिक है। लोगों ने बाहर से मनवाकर चला लिया है। व्रत किये, उपवास किये, शरीर से ब्रह्मचर्य पालन किया, इसलिए हो गया धर्म। वह धर्म नहीं है। आहाहा! वह शरीर से क्रिया नहीं हुई, वह मैंने नहीं किया, इसलिए नहीं हुई। आहाहा! और मुझे राग हुआ, इसलिए शरीर की विषय की क्रिया हुई, यह भी झूठ बात है। आहाहा! और मैंने विषय का राग नहीं किया, इसलिए शरीर की विषय की क्रिया नहीं हुई, यह भी झूठ बात है। आहाहा! वह शरीर की अवस्था तो शरीर के कारण से हुई है। वह (तो) मुझमें नहीं, परन्तु मुझमें मोह और राग-द्वेष, वह भी नहीं है। आहाहा! कठिन पड़े।

यहाँ तो ऐसा कहा न? **सुख की अनुभूति में लीन...** आहाहा! मेरा प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर, अकेला ज्ञान और आनन्द का कन्द-दल, अतीन्द्रियज्ञान और आनन्द का दल, ध्रुवसत्व, तत्त्व में लीन। आहाहा! ऐसे मुझे, **विशिष्ट आत्मतत्त्व...** ऐसा जो है, उसे ग्रहण करनेवाला जो शुद्धद्रव्यार्थिकनय है। ऐसा जो तत्त्व है, उसे ग्रहण करनेवाला जो शुद्ध द्रव्यार्थिक—शुद्ध द्रव्य जिसका प्रयोजन है, वह उसे पकड़ता है। उसके **बल से मेरे सकल मोह-राग-द्वेष नहीं हैं।** आहाहा! भगवान की पूजा और दया का भाव शुद्धद्रव्यार्थिकनय के बल से मुझमें नहीं है अर्थात् शुद्धद्रव्यार्थिकनय की दृष्टि का बल आने से शुद्ध द्रव्य के प्रयोजन की जो दृष्टि होने से मुझमें मोह और राग-द्वेष है नहीं। आहाहा! पर्याय में है, वे जाननेयोग्य हैं। आदरनेयोग्य तो यह चीज़ है। आहाहा!

अब (कहते हैं) **सहज निश्चयनय से...** स्वाभाविक निश्चयदृष्टि से **(१) सदा**

निरावरणस्वरूप,... मेरा प्रभु त्रिकाली निरावरण है। सकल निरावरण है। वस्तु को कभी आवरण हुआ नहीं। आहाहा! ३२० गाथा में आया है (कि) सकल निरावरण। आहाहा! वस्तु है, तत्त्व है, ज्ञायकभाव से भरपूर, आनन्द से भरपूर पदार्थ है, उसे आवरण कैसा? आहाहा! वह तो पर्याय और राग का सम्बन्ध और आवरण पर्याय में कहलाता है। वस्तु में आवरण-फावरण है नहीं। वस्तु को आवरण होवे तो वस्तु, अवस्तु हो जाए। समझ में आया? वस्तु है, वह यदि ढँक जाए, तब तो अवस्तु हो जाए। आहाहा!

सहज निश्चय के स्वभाव के कारण **(१) सदा निरावरणस्वरूप, (२) शुद्धज्ञानरूप,...** मैं। मैं सदा सहजचैतन्य के निश्चयनय से **(१) सदा निरावरण -स्वरूप, (२) शुद्धज्ञानरूप, (३) सहज चित्शक्तिमय,...** आहाहा! स्वाभाविक चित्शक्ति। आहाहा! यह लिया है। स्वाभाविक चित्शक्ति। स्वाभाविक ज्ञान का दल। स्वाभाविक ज्ञान का दल। यह त्रिकाल जो स्वाभाविक ज्ञान का दल और **(४) सहजदर्शन के स्फुरण से...** सहजदर्शन के स्फुरण से **परिपूर्ण मूर्ति...** आहाहा! **(-जिसकी मूर्ति...)** सहजस्वरूप। **(स्वरूप सहजदर्शन के स्फुरण से परिपूर्ण है...)** पूर्ण है, प्रगट प्रगट है, व्यक्त है। सम्पूर्ण दर्शन प्रगट है, व्यक्त है - परिपूर्ण भरा हुआ तत्त्व पूरा। आहाहा!

और (५) स्वरूप में अविचल स्थितिरूप... चारित्र लेते हैं। **स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज यथाख्यातचारित्रवाले...** मेरा स्वरूप तो चारित्र, यथार्थस्वरूप चारित्र त्रिकाल, त्रिकाल यथाख्यातचारित्रस्वरूप मेरा स्वरूप है। आहाहा! सहज निरावरण, सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजचित्शक्ति और सहजयथाख्यातचारित्र। आहाहा! यह प्रगट पर्याय की बात नहीं है। वस्तुस्वरूप अकषायस्वरूप है-वस्तुस्वरूप वीतरागस्वरूप है। यह वीतरागस्वरूप है, वह यथाख्यातचारित्रस्वरूप है। आहाहा! पर्याय में जो यथाख्यात प्रगट होता है, वह यथाख्यातचारित्र, स्वभाव में से प्रगट होता है। यथाख्यातचारित्रस्वरूप मैं त्रिकाल हूँ। आहाहा!

ऐसी बात बाहर आवे तो कितने ही कहते हैं, यह तो सोनगढ़ की बात है। व्यवहार की बात आवे तो यह अपनी है। अरे! भगवान! सोनगढ़ अर्थात् सोना। उसे जंग नहीं होती। इसी प्रकार भगवान त्रिलोक के नाथ को जंग और आवरण कैसा? प्रभु! आहाहा! उस लोहे को जंग होती है, सोने को नहीं होती। इसी प्रकार स्वर्ण समान भगवान यथाख्यातचारित्र

सम्पन्न प्रभु... आहाहा! त्रिकाल। आहाहा! कठिन पड़े परन्तु वस्तु तो ऐसी ही है, भाई! उसे किसी प्रकार हल्की, शिथिल और विकारी तथा अल्पज्ञतावाली मानना, वह सब विपरीतता है। आहाहा! समझ में आया?

सहज... सब लिया। शुद्ध **निश्चयनय से (१) सदा निरावरणस्वरूप, (२) शुद्धज्ञानरूप, (३) सहज चित्शक्तिमय,...** वीर्यवाला चित्शक्ति। दर्शनरूप। परिपूर्ण दर्शन की स्फुरणा और सहज **अविचल स्थितिरूप सहज यथाख्यातचारित्रवाले...** आहाहा! तत्त्व जो है वस्तु आत्मा, वह यथाख्यातचारित्र के स्वरूप से भरपूर है। आहाहा! यदि ऐसा स्वरूप न हो तो यथाख्यात (चारित्र) पर्याय में आयेगा कहाँ से? बाहर से आता है? आहाहा! वीतरागस्वभाव से भरपूर भगवान है। वह ऐसा है तो पर्याय में उसके आश्रय से वीतरागता आती है। आहाहा! पूर्ण ज्ञानस्वरूप भगवान है तो उसके आश्रय से केवलज्ञान की पर्याय प्रगट होती है। पूर्ण दर्शनस्वरूप है तो उसके आश्रय से पूर्ण दर्शन प्रगट होता है। पूर्ण वीर्य प्रभुस्वरूप है, पूर्ण वीर्यस्वरूप है तो अनन्त वीर्य की पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! ऐसा मार्ग! यह तो निश्चय की बात है, निश्चय की बात है, परन्तु निश्चय की अर्थात् सत्य बात है। ऐसा कहकर निकाल डालता है (कि) यह तो निश्चय की बात है और बहुत तो ऐसा हो गया है, यह तो सोनगढ़ की बात है। निश्चय की सत्य बात, वह सोनगढ़ की और अपनी व्यवहार की बात, खोटी वह अपनी।

मुमुक्षु : ऐसा भाग करने में क्या दिक्कत है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दिक्कत उसे स्वयं को है। उसे खतौना है कि हम भी यह व्यवहार करते-करते धर्मी हैं, ऐसा उन्हें कहना है। हम शुभभाव में रहे होने पर भी हमारे धर्म है। हम साधन करते हैं। आहाहा! क्या हो? प्रभु! भगवान! तू पूर्णानन्द प्रभु है, नाथ! तुझे ऐसी बुद्धि प्रगटो और पूर्णानन्द को प्राप्त हो। है, ऐसा हो जा। ऐसी ही वस्तु की स्थिति है। आहाहा! कोई प्राणी विरोध करे और विरोध से हल्के में जाये, वह भाव धर्मी को नहीं होता। आहाहा! चाहे जितना विरोध हो परन्तु प्रभु! तू तो ऐसा है न, नाथ! वह है, उसमें आ न! तो है, उसमें आ तो है ऐसी दशा तुझे प्रगट होगी। आहाहा! ऐसा है। हीरालालजी नहीं आये? मुम्बई गये होंगे। आहाहा! बहुत सरस बात। आहाहा!

स्वाभाविक निश्चयस्वरूप से, सत्यस्वरूप से यह सहज चित्शक्तिमय,

सहजज्ञानमय, सहजचारित्रमय,... आहाहा! सहजवीर्यमय, सहजदर्शनमय स्वभावस्वरूप। स्वभाव को कोई संख्या, उसे किसी क्षेत्र की महत्ता की आवश्यकता नहीं है। बड़ा क्षेत्र हो तो बड़ा, ऐसा नहीं है। आहाहा! निगोद का जीव एक अंगुल के असंख्य भाग में अनन्त रहे हैं, वे भी एक-एक आत्मा ऐसे हैं। आहाहा! सदा ही कहा न? सदा निरावरण कहा है न? कि कभी ऐसा है? आहाहा!

प्रभु! कहते हैं, निगोद के जीव, जिनका एक श्वास आयुष्य समान... परन्तु भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं और वह भिन्न तत्त्व परिपूर्ण ऐसा है। उसमें भी ऐसा ही है। पर्याय में अन्तर है; वस्तु तो ऐसी ही है। आहाहा! निगोद में हो या अभव्य हो, लो न! आहाहा! परन्तु उसका आत्मस्वभाव तो ऐसा ही है। वह पर्याय में प्रगट न हो, उसकी योग्यता न हो, वह अलग वस्तु है। तथापि अभव्य की वस्तु तो ऐसी ही है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' आहाहा! वह अभव्य कोई गुण नहीं है, अभव्य पर्याय की लायकात और योग्यता है। भव्य भी ऐसा कोई गुण नहीं है। गुण हो, तब तो त्रिकाल रहे। भव्यता गुण होवे तो त्रिकाल रहे, तो भव्यता कभी जाए ही नहीं और वह भव्यपना, वह तो पर्याय की योग्यता है। यहाँ तो कहते हैं मैं तो ऐसा हूँ, उसमें तो भव्यपना भी मुझमें नहीं है। ऐई! आहाहा! यह चौदह मार्गणा में आ गया न? चौदह मार्गणा। भव्य-अभव्य मैं नहीं हूँ। आहाहा!

अब यहाँ तो अभी ऐसा कहते हैं कि अपन भव्य हैं या अभव्य? काललब्धि पकी है या नहीं पकी? वह सर्वज्ञ जाने। अपने को खबर नहीं पड़ती। अरे रे! प्रभु! प्रभु! क्या करता है? भाई! आहाहा! यह शोभा नहीं देता, नाथ! महाप्रभु चैतन्य का, आनन्द का सागर है, उसे तू अभी भव्य-अभव्य हैं या नहीं, यह खबर नहीं-ऐसा तू कहे; और काललब्धि पकी है या नहीं, यह केवली जाने। तू क्या कहना चाहता है? भाई! आहाहा! ऐसा कहते हैं। एक ज्ञानमति है न? दिल्ली में पच्चीस लाख का जम्बूद्वीप मनाया है, वहाँ हस्तिनापुर में, मेरुपर्वत बनाया है। वह ऐसा कहती है समाचार पत्र में आया था। हम भव्य हैं या अभव्य हैं? और काललब्धि पकी, नहीं पकी - यह सर्वज्ञ जाने। अर र! प्रभु! प्रभु! तूने यह क्या बात की? ऐसी बुद्धि तुझे कहाँ से आयी प्रभु? आहाहा! भव्य और अभव्य मैं नहीं हूँ तो त्रिकाली निरावरण अखण्डानन्द प्रभु हूँ। आहाहा! है?

यथाख्यात चारित्रवाले ऐसे मुझे... आचार्य स्वयं कहते हैं। **ऐसे मुझे...** पंचम

काल के छद्मस्थ मुनि... आहाहा! भगवान के (निर्वाण के दो) हजार वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् अमृतचन्द्राचार्य पुकारते हैं। आहाहा! ये पद्मप्रभमलधारिदेव (पुकार करते हैं)। **ऐसे मुझे समस्त संसारक्लेश के हेतु क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं हैं।** आहाहा! मुझे नहीं है, ऐसा कहते हैं। भगवान स्वयं नहीं, केवली नहीं, तो भी स्वयं कहते हैं। आहाहा! ये पंचम काल के मुनि (कहते हैं)। आहाहा! वहाँ काल कहाँ है? वह तो त्रिकाल निरावरण प्रभु है। स्वाभाविक चित्शक्ति, स्वाभाविक ज्ञान, स्वाभाविक वीर्य, स्वाभाविक दर्शन, स्वाभाविक चारित्र, वह जिसका स्वभाव... जिसका स्वभाव है, उसे मर्यादा क्या? जिसका स्वभाव है, वह तो अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. आहाहा! अनन्त (स्वभाव) जिसका है, जिसकी प्रत्येक गुण की शक्ति का सामर्थ्य ही अनन्त है। ऐसे गुण का धारक ऐसा मैं। आहाहा!

मुझे.. है न? सबमें ऐसा आया। उसमें भी ऐसा आया था, नहीं? मुझे देवपर्याय नहीं, ऐसा आया था न? देखो न! मुझे भेद नहीं है, मुझे मनुष्य-तिर्यंच-वयकृत भेद नहीं है, मुझे यह सकल मोह-राग-द्वेष नहीं है। आहाहा! पंचम काल के जीव.. यह पंचम काल का जीव ही नहीं है। आहाहा! इसे कोई काल लागू पड़ता ही नहीं है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा.. दो हजार वर्ष पहले... ये तो बाद में हुए, आठ सौ वर्ष हुए, ये पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि। कुन्दकुन्दाचार्य के पाठ में है, उसमें से कहा है न? पंचरत्न। गाथा में... है। **णाहं णारयभावा** है न? मुझे नहीं नरकभाव, तिर्यंचभाव नहीं। मुझे नहीं **मग्गणठाणो णाहं गुणठाण** ये कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। आहाहा! मेरा प्रभु स्वभाव से भरपूर त्रिकाल है। उसमें यह सब है नहीं। आहाहा! यह कहीं बातों से वड़ा हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! इसके अन्तर के वीर्य का काम, अन्तर के परमस्वभावभाव को स्वीकार करे.. आहाहा! मैं यह हूँ, मुझे यह नहीं। मैं यह हूँ, मुझे यह नहीं। आहाहा! अस्ति-नास्ति, अनेकान्त। आहाहा!

भगवान है न सब.. आहाहा! अमृत के सागर से भरपूर प्रभु है न, भाई! अल्पज्ञ और विकार, वह तेरा स्वरूप है ही नहीं। तेरे स्वरूप में है ही नहीं। आहाहा! देह भी तेरा स्वरूप नहीं, राग तेरा स्वरूप नहीं, भेद भी तेरा स्वरूप नहीं। आहाहा! ध्रुव भगवान पूर्णानन्द का नाथ, ज्ञान का सागर, आनन्द का सागर, यथाख्यातचारित्र का पिण्ड प्रभु, आहाहा! अरे! परन्तु यथाख्यातचारित्र तो ग्यारहवें, बारहवें (गुणस्थान) में प्रगट होता है। वह तो पर्याय

की बात है। वह बात यहाँ कहाँ है ? यहाँ तो त्रिकाल (की बात है)। यथाप्रसिद्ध—जैसा उसका स्वरूप है, वैसा चारित्रवाला वह स्वयं भगवान है, त्रिकाल है। वह निगोद में भी ऐसा है, परन्तु उसे खबर नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं, मैं ऐसा हूँ। आहाहा! ऐसे सब भगवान ऐसे हैं। आहाहा! जैसा मैं हूँ, वैसे ही दूसरे सब आत्मा को मैं मानता हूँ। समस्त आत्माएँ परिपूर्ण प्रभु हैं। आहाहा! शरीर को न देख, पर्याय को न देख, राग को न देख, मेरा प्रभु पूर्ण भगवान से भरपूर है न! भग अर्थात् लक्ष्मी से भरपूर। पूर्ण लक्ष्मी से भरपूर प्रभु है। आहाहा! ऐसे मुझे.. आहाहा! है ? नहीं, मुझे नहीं है। आहाहा! ये क्रोध-मान-माया-लोभ मुझे नहीं है।

मुझे समस्त संसारक्लेश के हेतु... संसार का हेतु जो क्रोध-मान-माया-लोभ-कषाय, जो संसार का लाभ, मेरे स्वरूप में है ही नहीं। यहाँ तो आनन्द के लाभवाला भगवान मैं हूँ। आहाहा! आत्मा को मानना, वह कहीं साधारण बात नहीं है। ऐसे आत्मा को मानना। ऐसा आत्मा... आत्मा अर्थात् आत्मा ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसे स्वभाववाला भरपूर, प्रत्येक समय में परिपूर्ण प्रभु! सहज निरावरण चैतन्यशक्ति, ज्ञान, दर्शन और यथाख्यातचारित्र से परिपूर्ण प्रभु, ऐसे मुझे क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं है।

अरे...! प्रभु! आप पंचम काल के साधु और भगवान के बाद १५०० वर्ष में हुए। आहाहा! हजार वर्ष, तो यह तुम्हें ऐसी कहाँ से खबर पड़ी ? आहाहा! यह हम हैं न, बापू! हम हैं, उसकी खबर पड़ी है। आहाहा! परन्तु आप भगवान को पूछने गये नहीं, कुन्दकुन्दाचार्य तो गये थे परन्तु ये तो समकिती... आहाहा! प्रभु! आप केवली परमात्मा विराजते हैं, वहाँ गये नहीं और पंचम काल के आप साधु, ऐसी बातें करो। हम भगवान के पास गये हैं। हमारा भगवान जो है, वह पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण सहज निरावरण, पूर्ण शान्ति और पूर्ण यथाख्यात शान्ति से भरपूर, चारित्र से भरपूर है। आहाहा! ऐसे मुझे... यह मैं हूँ, ऐसे मुझे ये क्रोध-मान-माया-लोभ मुझे नहीं है। आहाहा! हो गया केवलज्ञान ? क्रोध-मान-माया (नहीं, ऐसा कहते हो), सुन न अब। केवलज्ञान हुआ, वह तो पर्याय है। यहाँ तो केवलज्ञान, वह पर्याय मैं नहीं; मैं तो महाप्रभु हूँ। आहाहा!

मुमुक्षु : केवलज्ञान का जनक हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान का पिता। केवलज्ञान वह प्रज्ञा है। उस प्रजा का तो यह पिता है। आहाहा! पर्याय है, प्रजा अर्थात् पर्याय। आहाहा!

वस्तु का स्वभाव ऐसा ही त्रिकाल है। आहाहा! यह गाथा में नहीं आया? '**एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए**' आता है न, समयसार की तीसरी गाथा में। '**एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए**' सर्वत्र लोक में सुन्दर भगवान पूर्णानन्द से त्रिकाल भरपूर है। उसे राग का और बन्ध का सम्बन्ध कैसा, वह तो विसंवाद-झगड़ा खड़ा किया। आहाहा! तीसरी गाथा से शुरु किया '**एयत्तणिच्छयगदो समओ**' पदार्थ '**सव्वत्थ**' सर्वत्र। श्रीमद् ने कहा, सत् सत् है। सत् सर्वत्र है। सत् सर्वत्र है। सत् सरल है। ऐसे शब्द प्रयोग किये हैं। सत्, सत् है। सत् सर्वत्र है, सत् सर्वत्र है, सत् सरल है। सत् समझानेवाले गुरु चाहिए, इतनी बात ली है। आहाहा! बहुत सरस बात! गजब बात है। आहाहा!

प्रभु! तू ऐसा है। यह विशेष अतिशय करके बात नहीं होती है। आत्मा कहते हैं, वह आत्मा ऐसा ही है। नौ तत्त्व में आत्मा कहते हैं, वह आत्मा ऐसा ही है। त्रिकाल आत्मा ऐसा है। चाहे जिस पर्याय में हो परन्तु वस्तु तो त्रिकाल ऐसी ही है। आहाहा! उसकी दृष्टि करना, उसका आलम्बन लेना। वह निर्जरा अधिकार में आता है न? ज्ञान का अवलम्बन लेने से ऐसा होता है, फिर ऐसे भ्रान्ति टलती है। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, प्रभु! उसका आश्रय लेने से, अवलम्बन करने से भ्रान्ति मिटती है, स्वरूप की प्राप्ति होती है। आहाहा! निर्जरा अधिकार में है। कर्म टलते हैं और यह सब बहुत बोल लिए हैं। आहाहा! उसमें होवे (तो) वे टले कहाँ से? उसमें वे नहीं हैं। आहाहा! उसमें कर्म तो नहीं परन्तु अल्पज्ञ पर्याय उसमें नहीं। आहाहा! निर्जरा अधिकार में लिया है न? भाई! मति-श्रुतज्ञान वह बढ़ता जाता है, वह सामान्य को अभिनन्दन करता है। तोड़ता नहीं है। आहाहा! है न? मति-श्रुत की शुद्धि बढ़ती है, वह भेद नहीं करता। वह अभेद का अभिनन्दन करता है। सामान्य में एकाकार विशेष होता है। आहाहा! निर्जरा अधिकार में है।

यहाँ तो मुझे नहीं। प्रभु! तुम्हें तो अवधिज्ञान नहीं न, मन:पर्ययज्ञान नहीं, केवलज्ञान नहीं। पंचम काल के साधु, मति और श्रुतज्ञान दो हैं। बापू! इन मति-श्रुतज्ञान में ही यह आत्मा ऐसा ज्ञात होता है। आहाहा! अवधि और मन:पर्यय की आवश्यकता नहीं है।

क्योंकि वह साधक नहीं है। मति-श्रुत साधक है और साध्य केवलज्ञान है, ध्येय द्रव्य है। ध्येय परिपूर्ण हूँ, वह द्रव्य ध्येय है। साधक है वह मति-श्रुतज्ञान है। साध्य है, वह उपेय है, वह सिद्ध है। उपाय है, वह साधन है। ध्येय है, वह द्रव्य त्रिकाली - ऐसा है। आहाहा! अरे! भगवान का विरह पड़ा। बाद में लोगों ने आत्मा को किस रीति से कल्पित कर डाला और सत्य था, उसे असत्य कर डाला तथा असत्य को सत्य सिद्ध कर दिया। आहाहा! यह व्रत, तप, भक्ति और पूजा से होता है, (ऐसा मान लिया)।

निर्जरा अधिकार में कहा, कोई जिन-आज्ञा के बाहर करे... तो भी कुछ नहीं हुआ और जिन-आज्ञा में कहे हुए व्रतादि को करे तो भी मिथ्यादृष्टि है। आता है न? आहाहा! यह जो निश्चय वस्तु है, पूर्ण स्वभाव से भरपूर, ज्ञान से परिपूर्ण, प्रभुता से परिपूर्ण, दर्शन से परिपूर्ण, शान्ति से परिपूर्ण, चारित्र से परिपूर्ण, वीतरागता से परिपूर्ण, आनन्द से परिपूर्ण, जीवत्वशक्ति से परिपूर्ण, कर्ताशक्ति से परिपूर्ण, कर्मशक्ति / कार्यशक्ति से परिपूर्ण... आहाहा! ऐसे परिपूर्ण स्वभाव से भरपूर मुझे, क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं है। आहाहा! हो गये केवली? सुन न अब, केवली तो पर्याय है। हो गया भगवान? मैं भगवान पूर्णानन्द का नाथ भगवानस्वरूप हूँ, वह मैं हूँ। यह पर्याय के भेद-फेद वह मैं नहीं हूँ। यह प्रतिक्रमण है। आहाहा!

इतनी बात करके अब कहते हैं कि **अब, इन (उपरोक्त) विविध विकल्पों से (भेदों से) भरी हुई विभावपर्यायों का निश्चय से मैं कर्ता नहीं हूँ,...** चौदह मार्गणा, चौदह जीवस्थान, चौदह गुणस्थान, क्रोध, मान, माया, लोभ... आहाहा! और काया वयकृत आदि भेद, उनका मैं कर्ता नहीं। आहाहा! तब कौन करता है? सवेरे भाई ने प्रश्न किया था न? राग, राग को करे; मैं कर्ता नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! प्रभु का विरह पड़ा और प्रभु का मार्ग रह गया वाणी में। शास्त्र में वाणी रह गयी, वाणी में भाव भरे हुए रहे। उन भाव से भरा हुआ आत्मा, वह रहा हुआ है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जो भगवान आत्मा, ऐसे भेदों का मैं कर्ता नहीं, वह कराता नहीं, मैं उनका करानेवाला नहीं। चौदह गुणस्थान का कर्ता नहीं, चौदह जीवस्थान का कर्ता नहीं, चौदह... आहाहा! मार्गणास्थान का कर्ता नहीं। ओहोहो!

पुद्गलकर्मरूप कर्ता का (-विभाव-पर्यायों के कर्ता जो पुद्गलकर्म उनका)

अनुमोदक नहीं... कर्ता सिद्ध किया वापस। **(विभाव-पर्यायों के कर्ता जो पुद्गलकर्म...)** वह तो सब कर्म के निमित्त से सब भेद आदि होते हैं। मेरे स्वभाव में है नहीं। उनका **अनुमोदक नहीं...** भले वे निमित्त के आधीन ऐसे हों, परन्तु मैं उनका अनुमोदक नहीं हूँ। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)